



ग्रामीण भारत में दलित

— रजनीश

सूत्र वाक्य के रूप में यह अक्सर सुनाई देता है कि 'दलितों के सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक व राजनैतिक अधिकारों का हनन किया जा रहा है।' यह स्पष्ट है कि मानवाधिकारों को जिन श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है उसमें यह स्पष्ट वर्गीकरण है। हम यहां सारे मानवाधिकारों के केन्द्र में गौरवपूर्ण जीवन के अधिकार (Right to Dignity) को मानते हुए वर्तमान परिदृश्य के संदर्भ में अपनी बात रखने का प्रयास कर रहे हैं।

सामाजिक परिदृश्य : दैनिक जीवन के संदर्भ में

सामाजिक रूप से दलित समुदाय की क्या स्थिति है, यह स्पष्ट करने के लिए किसी व्याख्या की आवश्यकता नहीं है। देश की आबादी का 73 प्रतिशत हिस्सा ग्रामीण है और देश में दलित समुदाय की जनसंख्या 250 मिलियन है। स्पष्ट है कि ग्रामीण परिस्थितियाँ हमारे देश की सामाजिक स्थिति का प्रतिनिधित्व करती हैं। गाँवों में दलित समुदाय को कितने सामाजिक अधिकार प्राप्त हैं, इसे दैनिक जीवन की सामान्य दिनचर्या से समझा जा सकता है। उत्तर प्रदेश के अधिकांश गाँवों में दलित परिवारों के घरों में पीने और दैनिक उपयोग के लिए पानी सहज उपलब्ध नहीं है क्योंकि सार्वजनिक जलस्रोतों का उपयोग करने का भी उन्हें अधिकार नहीं है। आज भी मंदिरों के सामने से निकलने के लिए उन्हें अपने पैरों से चप्पल निकालनी होती है। यह स्थिति सिर्फ उत्तर प्रदेश की नहीं है, कमोबेश भारत के सभी ग्रामीण क्षेत्रों की है।

सभी ग्रामीण क्षेत्रों में आज भी दलितों का मंदिरों में प्रवेश वर्जित है, सामुहिक भोज के अवसरों पर वे अन्य जातियों के साथ नहीं बैठ सकते, यहां तक कि कई क्षेत्रों में तो उन्हें अपने घर से बर्तन लाने होते हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में मैला साफ करना इस समुदाय की एक जाति के लिए अनिवार्य कर्म है जिसके ऐवज में उसे कोई नकद पारिश्रमिक प्राप्त नहीं है बल्कि प्रत्येक घर

से रोटियाँ या थोड़ा सा अनाज मिलता है। शासकीय विद्यालयों में इस समुदाय के बच्चे उच्च जातियों के बच्चों से अलग बैठने के लिए विवश किये जाते हैं। मध्याह्न भोजन पकाने वाली महिला यदि दलित समुदाय की है तो उच्च जाति के बच्चों और उनके अभिवावकों द्वारा उसका बहिष्कार किया जाता है। वस्तुओं के आदान-प्रदान में पूरी सावधानी बरती जाती है कि कहीं शरीर छू न जाए और यह सिर्फ ग्रामीण अंचलों में ही नहीं बल्कि महानगरीय परिवेश में भी उतनी ही तीव्रता से मौजूद है। इस समुदाय के सदस्यों के लिए अभद्रतापूर्ण भाषा का उपयोग करना ग्रामीण क्षेत्रों में एक आम बात है जो कि इस हद तक व्यवहार में है कि दलितों के लिए यह मान्य भाषा बन चुकी है। बुन्देलखण्ड (मध्यप्रदेश और उत्तरप्रदेश का एक बड़ा हिस्सा) के ग्रामीण अंचल में इस समुदाय के सदस्यों का सीताराम से सितउआ, लल्लौराम से ललुआ और रतनीदेवी से रतनिया हो जाने से लेकर थोड़े से क्रोध में ही सिर्फ जातिसूचक गाली से संबोधित किया जाना एक आम घटना है।

इसके अलावा मूलभूत सुविधाओं तक पहुँच के मामले में भी इस समुदाय के सदस्यों को जानबूझकर दूर रखने का प्रयास किया जाता है। पी.डी.एस., अन्नपूर्णा, अन्त्योदय जैसी योजनाएँ जो कि खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने के दृष्टिकोण से बड़ी सफलता के रूप में देखी जा रही हैं, इस समुदाय की खाद्य सुरक्षा को किस हद तक सुनिश्चित कर पा रही हैं और इसके पीछे क्या वजहें हैं? छत्तीसगढ़ में एक ओर जहाँ पी.डी.एस. के अंतर्गत 50 पैसे प्रति किलो की दर पर नमक उपलब्ध कराने की सफलता है वहीं दूसरी ओर ऐसे अनगिनत दलित परिवार हैं जिनके पास राशन कार्ड ही नहीं है, जिनके पास कार्ड है उनको खाद्यान्न उपलब्ध नहीं हो पाता और कई परिवारों का कार्ड वितरण केन्द्र के संचालक के पास है जिस पर फर्जी प्रविष्टियाँ हैं। देश के अधिकांश हिस्सों में इस समुदाय के सदस्यों को निर्धारित से अधिक कीमत पर खाद्यान्न प्रदान किया जाता है और कई बार यह कहकर टाल दिया जाता है कि खाद्यान्न समाप्त हो चुका है (जिसे कि खुले बाजार में बेच दिया जाता है)। इन योजनाओं की कमोबेश सभी स्थानों पर यही स्थिति है।

आर्थिक परिदृश्य

गौरवपूर्ण जीवन जीने के लिए मूलभूत आवश्यकताओं की आपूर्ति एक अहम बिंदु है, जिसके लिए आर्थिक सक्षमता आवश्यक है। ग्रामीण क्षेत्रों में दलित आज भी या तो अपने पारंपरिक व्यवसाय में संलग्न हैं या फिर मज़दूरी पर आश्रित हैं। वे सभी कार्य जिनको करने में हर व्यक्ति को घिन होती है, इस समुदाय की आजीविका हैं, जैसे कि मैला साफ करना, मृत जानवरों को फेंकना, मृत जानवरों की चमड़ी उतारना आदि। इसके अलावा कृषि मज़दूरी के साथ-साथ उच्च जाति के सदस्यों के घरों में तमाम तरह की बेगारी करना भी इस समुदाय के लिए विवशता है क्योंकि इनके पास आजीविका के अन्य स्थाई साधन उपलब्ध नहीं हैं।

खेतों में काम करने के ऐवज में भी उन्हें जितनी मज़दूरी मिलती है वह किसी भी मायने में पर्याप्त या उचित नहीं कही जा सकती। मध्यप्रदेश के कई अंचलों में भूमिस्वामियों के खेतों में फसल काटने की मज़दूरी पचासी या बीसौरी के रूप में दी जाती है (यह फसल की किस्म पर निर्भर करता है) यानि कि जब भूमिस्वामी के लिए पचास या बीस गट्टे फसल के काट लिए जाते हैं तब मज़दूर अपने लिए एक गट्टा फसल का पाता है। अब जबकि कुछ स्थितियाँ बदली हैं तो प्रतिदिन 40 से 50 रुपये रोज़ की मज़दूरी का भी समावेश हुआ है। परंतु फसल बोने, खेतों में पानी देने, कटाई जैसे कार्य होने के बावजूद कृषि कार्य निरंतर वर्ष भर नहीं चलता, और मज़दूर उच्च वर्ग के सदस्यों के लिए अन्य कार्य करने को विवश होता है, जिसके ऐवज में उसे कई क्षेत्रों में अभी भी सिर्फ भोजन प्राप्त होता है और यदा-कदा आवश्यकता पड़ने पर आर्थिक मदद।

वर्तमान समय में जबकि सरकार द्वारा राष्ट्रीय ग्रामीण रोज़गार गारंटी अधिनियम जैसा कानून क्रियान्वित किया जा रहा है जिसके ज़रिये यह वर्ग अपनी आर्थिक स्थिति में थोड़ा सुधार कर सकता है, तो उसमें भी इस वर्ग का शोषण स्पष्ट नज़र आता है। ज़ाहिर है कि अकुशल शारीरिक श्रम करने वालों में इस वर्ग की ही संख्या सबसे अधिक है और अधिकांश सदस्य अशिक्षित हैं। परिणामस्वरूप मस्टर रोल में काम के दिनों की गलत प्रविष्टियों, निर्धारित से कम मज़दूरी के भुगतान, और यदि लाभुक भी दलित है तो उससे तमाम कागज़ी कार्यवाहियों के लिए रिश्वत की मांग के कई उदाहरण सामने हैं।

भूमिहीनों को शासकीय भूमि के आबंटन में भी धांधली की बात आम सुनाई देती है। कई स्थानों पर दलितों को आबंटित की जाने वाली भूमि सवर्णों के नाम कर दी गई। दलितों को आबंटित की गई भूमि पर नाम तो दलित का है परंतु कब्जा किसी और का है, ऐसे में वह अपनी ही भूमि का उपयोग नहीं कर पा रहा है। इसी से स्पष्ट होता है कि जिस वर्ग के पास अपनी कृषि भूमि नहीं है, स्थाई रोज़गार नहीं है, आर्थिक सुदृढ़ता के अवसरों में जिसका शोषण किया जा रहा है, जो जीविकोपार्जन के लिए मज़दूरी, उच्च वर्ग की बेगारी और घृणित कार्यों पर आश्रित है वह किस हद तक आर्थिक सुदृढ़ हो सकता है और बेहतर जीवन की कल्पना कर सकता है।

सांस्कृतिक परिदृश्य

हमारे देश में विभिन्न संस्कृतियों के मिलाप और एकीकरण की बात बड़े ही गर्व से कही जाती है और इस बात से सभी सहमत हैं कि हर वर्ग की, क्षेत्र की अपनी अलग और अनूठी संस्कृति है। किसी क्षेत्र की संस्कृति को निर्मित करने में वहां के प्रत्येक वर्ग की परंपराएँ और मान्यताएँ प्रमुख कारक होती हैं। हमारे संविधान में भी प्रत्येक व्यक्ति को अपने धर्म, संस्कृति के पालन की स्वतंत्रता दी गई है परंतु वास्तविकता में दलितों को अपनी परंपराओं, संस्कृति

के पालन की उतनी स्वतंत्रता नहीं है। उत्तरप्रदेश, बिहार के सुदूर ग्रामीण अंचलों में दलित परिवारों में धूमधाम से विवाह करना, धार्मिक आयोजनों में अन्य समुदायों की तरह सक्रिय भागीदारी करना ख़तरे से खाली नहीं है। अभी भी देश के अंदरूनी ग्रामीण अंचलों में तो यहां तक स्थिति है कि इस समुदाय के सदस्य आधुनिक वस्त्र नहीं पहन सकते, उच्च वर्ग के लोगों के सामने साइकिल पर नहीं चल सकते, धूप का चश्मा नहीं लगा सकते।

धार्मिक मान्यताओं के मामले में भी इस वर्ग की अपनी स्वतंत्रता नहीं है। वर्षों से सामाजिक, आर्थिक और वैचारिक गुलामी सहते और सुविधाओं से दूर रहते इस वर्ग ने जब अपनी स्वतंत्रता का इस्तेमाल कर ईसाई धर्म को अपनाना शुरू किया तो जो विवाद उत्पन्न हुआ उससे सभी वाकिफ़ हैं (जबकि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी इच्छानुसार किसी धर्म को मानने का अधिकार है)। और उसके बाद घर वापसी के नाम पर चलाई गई मुहिम, जिसमें कहा गया कि यह वर्ग हिन्दू समाज का एक अभिन्न हिस्सा है (जिन आदिवासियों को पहले भारत का मूल निवासी ही नहीं माना जा रहा था, हिन्दुओं का जिनसे कोई वास्ता नहीं था, वे भी इस मुहिम में हिन्दू समाज का अभिन्न हिस्सा कहे गए) यह स्पष्ट करती है कि इस वर्ग की अपनी संस्कृति स्वीकार्य नहीं है, वह किसी धर्म के शरणागत ही होगी। हालांकि दलितों को अपना अभिन्न हिस्सा कहने वाले, अपने भाई का दर्जा देने वाले तथाकथित धर्मावलम्बियों ने यह स्पष्ट नहीं किया कि घर वापसी के बाद इस समुदाय के सदस्यों का दर्जा क्या होगा, क्या उन्हें भी अन्य समुदायों के सदस्यों के समान बराबरी का अधिकार प्राप्त होगा या फिर से दलित ही रहेंगे। जिस जाति के सदस्य होने के कारण वे आज तक प्रताड़ित और बहिष्कृत होते रहे हैं, क्या फिर से वही जाति उनकी पहचान होगी और सामाजिक स्थितियों को सुनिश्चित करेगी।

राजनैतिक परिदृश्य

लोकतांत्रिक व्यवस्था में दलितों की राजनैतिक सहभागिता को सुनिश्चित करने के लिए आरक्षण व्यवस्था का उपयोग किया जा रहा है। शिक्षा, शासकीय नौकरियों के अलावा पंचायत से लेकर विधानसभा तक के चुनावों में दलित सीटों का आरक्षण निश्चित ही एक अच्छा संकेत है, परंतु चुनाव जीत जाने के बाद भी दलितों को उनके अधिकारों से दूर रखने के लिए तमाम हथकण्डे अपनाए जाते हैं। पंचायत चुनावों में जिन भी पंचायतों में दलित सरपंच, पंचायत सचिव या ग्राम प्रधान/मुखिया चुने गए हैं वहां यह आलम है कि वे सिर्फ नाम के लिए ही हैं, उन्हें प्रभावशाली वर्ग द्वारा ही संचालित किया जाता है। कई स्थानों पर तो बाकायदा चुने जाने के बाद भी दलित अपने अधिकार और पद, जिसके कि वे पात्र हैं, प्राप्त नहीं कर पाते और अविश्वास प्रस्ताव दलितों से उनके अधिकार छीनने का उच्च जाति द्वारा निकाला गया

सबसे अच्छा रास्ता है। कई जगहों पर जहाँ दलित चुने गए हैं उनके खिलाफ हिंसा की घटनाएँ सामने आई हैं। पंचायत में मुख्यतः दो तरह से भेदभाव किया जाता है। एक— दलितों को पंचायत की कार्यवाही, विकास कार्यों, योजनाओं से दूर रखा जाता है। दूसरा— जहाँ कहीं भी आरक्षण के बल पर दलित सत्ता में हैं, वे निशाना बनाए जाते हैं और एक समय के बाद उनका पद अमान्य और रद्द घोषित कर दिया जाता है। पंचायतों में दलित बस्तियों में विकास कार्य भी जाति पहचान का शिकार होते हैं और उन्हें ठीक ढंग से पूरा नहीं किया जाता और न ही इनके योजना निर्माण और क्रियान्वयन प्रक्रिया में दलितों को शामिल किया जाता है।

“बनारस जिले के हरुंआ विकासखण्ड के ग्राम वाजीदपुर के निवासी श्री प्रेमनारायण, जो कि चमार समुदाय के सदस्य हैं, सितम्बर 2005 में ग्राम प्रधान चुने गए थे और 8 सितम्बर 2005 को पंचायत समिति का गठन हुआ था। निर्गामी समिति द्वारा श्री नारायण को ग्राम कार्यालय के कार्य रजिस्टर, सम्पत्ति रजिस्टर जो कि गाँव के प्रबंधन से संबंधित हैं आदि कई दस्तावेज़ नहीं सौंपे गए। साथ ही दैनिक रजिस्टर संभालने को नकारने के लिए निर्गामी समिति ने चलायमान सम्पत्ति/वस्तुओं को सौंपने से इन्कार करते हुए कार्यालय में ही रखा। यहाँ तक कि श्री नारायण को उच्च जाति के सदस्यों द्वारा कई दस्तावेज़ों पर हस्ताक्षर करने के लिए भी बाध्य किया गया। इस सबके परिणामस्वरूप वे ग्राम प्रधान के रूप में अपने कर्तव्यों के निर्वाह में भी असमर्थ रहे।”

एक ओर जहाँ चयनित प्रतिनिधियों के साथ इस तरह की घटनाएँ सामने आती हैं वहीं दूसरी ओर दलित समुदाय के मतदाताओं को किसी निश्चित व्यक्ति के पक्ष में मतदान करने के लिए बाध्य किया जाता है, जिसके लिए मत ख़रीदने से लेकर लालच देने और धमकाने तक कई तरह के हथकण्डे अपनाए जाते हैं। दलित मतदाताओं को अपने मताधिकार का उपयोग करने से रोकना एक और तरीका है, जिनके नाम पर किसी विशेष व्यक्ति के पक्ष में फ़र्जी मतदान किया जाता है।

यह स्पष्ट करता है कि ग्रामीण स्तर पर विकास कार्य और योजना निर्माण में दलित समुदाय की सहभागिता को किस प्रकार प्रभावित किया जाता है। लोकतांत्रित व्यवस्था का गौरव—गान करने वाली राजनैतिक व्यवस्था में किस तरह समाज में हाशिए में रह रहे समुदाय के राजनैतिक अधिकारों का हनन किया जाता है।

दलित और कानून व्यवस्था

दलितों के लिए अनुसूचित जाति/जनजाति (अत्याचार निरोधक) अधिनियम, 1989 और नियम, 1995 जैसे कानून होने के बावजूद दलितों के विरुद्ध अत्याचार की स्थितियों में कोई सार्थक

परिवर्तन नज़र नहीं आता। देश के विभिन्न राज्यों में दलित अत्याचार के आंकड़ों में उत्तरोत्तर वृद्धि हुई है। यदि एन.सी.आर.बी. के आंकड़े ही देखे जाएं तो उत्तरप्रदेश में, जहाँ कि सर्वाधिक दलित जनसंख्या है, 2005 में दर्ज 4403 घटनाओं के मुकाबले वर्ष 2007 में 6148 घटनाएँ दर्ज हुई हैं। इसी प्रकार आंध्रप्रदेश, बिहार, छत्तीसगढ़, झारखण्ड, तमिलनाडु में क्रमशः 3632, 1906, 951, 760, 139 के मुकाबले 4136, 2851, 1126, 806, 1760 घटनाएँ दर्ज हुई हैं।

इसके अतिरिक्त यह भी एक तथ्य है कि कई घटनाएँ ऐसी होती हैं जो दर्ज ही नहीं होतीं। ग्रामीण स्तर पर दलितों के खिलाफ़ अत्याचार, मारपीट, अभद्र व्यवहार की ऐसी कई घटनाएँ होती हैं जिनके खिलाफ़ पुलिस में कोई प्राथमिकी दर्ज नहीं कराई जाती। ग्रामीण स्तर पर ही दबंग व्यक्तियों द्वारा मामले को दबा दिया जाता है।

एस.सी./एस.टी. एक्ट होने के बावजूद दलितों को न्याय नहीं मिल पाता है। इसमें पुलिस प्रशासन की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। दलित विरोधी मानसिकता, स्थानीय पुलिस प्रशासन पर प्रभावशाली जातियों के प्रभाव और राजनैतिक हस्तक्षेप के कारण या तो पुलिस प्राथमिकी (एफ.आई.आर.) ही दर्ज नहीं करती या फिर प्राथमिकी में उचित धाराओं का प्रयोग नहीं किया जाता। इसके अतिरिक्त केस वापस लेने और समझौता करने के लिए भी पुलिस द्वारा दबाव बनाया जाना और पुलिस थानों में दलितों के साथ किया जाने वाला अभद्रतापूर्ण व्यवहार भी दलितों को न्याय की पहुँच से दूर रखता है।

एक ओर जहाँ अधिनियम के अनुसार जाँच अधिकारियों की अपर्याप्ता है वहीं दूसरी ओर अधिवक्ताओं में भी कानून के बारे में पूरी जानकारी न होना और प्रावधान के अनुसार विशिष्ट न्यायालयों का अभाव भी अधिनियम के अनुरूप दलितों को न्याय दिलाने में बाधक है। जबकि ऐसे भी उदाहरण मौजूद हैं जहाँ पुलिस की जानकारी में दलितों पर अत्याचार की घटनाएँ अंजाम दी गई हैं।

दरअसल दलितों के शोषण की सामंतवादी प्रवृत्ति आज भी अपने चरम पर है, उन्हें अपने से नीचा और अपने पर आश्रित मानने वाली विचारधारा के कारण कानून व्यवस्था में दलितों के लिए संवेदनहीनता बढ़ी है। सख्त कानूनी धाराएँ होने के बावजूद स्थानीय प्रभावशाली व्यक्तियों और तथाकथित उच्च वर्ग का पोषण करने वाली राजनीति के प्रभाव के चलते यह धाराएँ सिर्फ़ कानून की किताबों में ही बंद हैं। इसके अतिरिक्त अधिकांश राज्यों और केन्द्र शासित प्रदेशों में दलितों के विरुद्ध अपराधों की बढ़ती हुई घटनाओं के ग्राफ को प्रदर्शित करने की प्रवृत्ति ने भी प्रकरण दर्ज होने को प्रभावित किया है, क्योंकि यह ग्राफ पुलिस प्रशासन और कानून व्यवस्था पर प्रश्न चिन्ह लगाता है।